कक्षा 10 · इतिहास

औद्योगीकरण का युग

अध्याय 4

MARUSHALA

भरत चौधरी और वनिता कुमारी ने बनाया · marushala.com

दो तसवीरें, जो पूरी सच्चाई नहीं बतातीं

चित्र 1 — ‘डॉन ऑफ़ द सेंचुरी’, 1900 · प्रगति की देवी, पंखों वाला पहिया, पीछे रेलवे-कैमरा-मशीनें **चित्र 2 — ‘दो जादूगर’, 1901** · ऊपर अलादीन, नीचे आधुनिक मेकैनिक **अलादीन पूरब और अतीत का प्रतीक है; मेकैनिक पश्चिम और आधुनिकता का**

और अब अध्याय का असली सवाल

ये छवियाँ किस प्रकार विकसित हुई हैं? **क्या औद्योगीकरण के लिए तीव्र तकनीकी विकास हमेशा ज़रूरी होता है? ...औद्योगीकरण से लोगों की ज़िंदगी पर क्या असर पड़ा है?**

पाठ्यपुस्तक, पृष्ठ 80

इन तसवीरों में औद्योगीकरण का इतिहास विकास की कहानी के रूप में सामने आता है — पर पूरी कहानी यही नहीं है

1

औद्योगिक क्रांति से पहले

आदि-औद्योगीकरण

एक ग़लतफ़हमी जो अध्याय सबसे पहले तोड़ता है

दरअसल, **इंग्लैंड और यूरोप में फ़ैक्ट्रियों की स्थापना से भी पहले ही अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार के लिए बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन होने लगा था। यह उत्पादन फ़ैक्ट्रियों में नहीं होता था।**

पाठ्यपुस्तक, पृष्ठ 81

बहुत सारे इतिहासकार औद्योगीकरण के इस चरण को 'आदि-औद्योगीकरण' (proto-industrialisation) का नाम देते हैं — यहाँ **'आदि' का अर्थ है किसी चीज़ की पहली या प्रारंभिक अवस्था**

सौदागर गाँवों की तरफ़ क्यों गए

- विश्व व्यापार के विस्तार और उपनिवेशों की स्थापना के कारण चीज़ों की माँग बढ़ने लगी थी
- इस माँग को पूरा करने के लिए केवल शहरों में रहते हुए उत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता था
- वजह यह थी कि शहरों में शहरी दस्तकारी और व्यापारिक गिल्ड्स काफ़ी ताक़तवर थे
- गिल्ड्स कारीगरों को प्रशिक्षण देते थे, उत्पादकों पर नियंत्रण रखते थे, प्रतिस्पर्धा और मूल्य तय करते थे तथा नए लोगों को व्यवसाय में आने से रोकते थे
- शासकों ने भी विभिन्न गिल्ड्स को ख़ास उत्पादों के उत्पादन और व्यापार का एकाधिकार दिया हुआ था

फलस्वरूप, नए व्यापारी शहरों में कारोबार नहीं कर सकते थे। इसलिए वे गाँवों की तरफ़ जाने लगे

और गाँव वाले क्यों तैयार हो गए

- यह एक ऐसा समय था जब खुले खेत ख़त्म होते जा रहे थे और कॉमन्स की बाड़ाबंदी की जा रही थी
- साझा ज़मीनों से लकड़ी, बेरियाँ, सब्जियाँ, भूसा और चारा बीनकर काम चलाने वाले छोटे किसान (कॉटेजर) आमदनी के नए स्रोत ढूँढ़ रहे थे
- बहुतों के पास छोटे-मोटे खेत तो थे लेकिन उनसे घर के सारे लोगों का पेट नहीं भर सकता था
- जब सौदागरों ने पेशगी रक़म दी तो किसान फ़ौरन तैयार हो गए
- वे गाँव में ही रहते हुए अपने छोटे-छोटे खेतों को भी सँभाल सकते थे

इस आमदनी ने खेती के कारण सिमटती आय में बड़ा सहारा दिया और उन्हें पूरे परिवार के श्रम संसाधनों के इस्तेमाल का मौक़ा भी मिल गया

कपड़ा कैसे बनता था — पूरी शृंखला

कड़ी	काम
स्टेप्लर (Staplers)	रेशों के हिसाब से ऊन को ‘स्टेपल’ करता है यानी छाँटता है
कातने वाले	ऊन से धागा बनाते थे
बुनकर	धागे से कपड़ा बुनते थे
फ़ुलर्स (Fullers)	‘फुल’ करता है यानी चुनटों के सहारे कपड़े को समेटता है
रंगसाज़	कपड़े को रंगते थे
लंदन	यहाँ फ़िनिशिंग होती थी — इसीलिए लंदन को फ़िनिशिंग सेंटर कहा जाने लगा

उत्पादन के प्रत्येक चरण में प्रत्येक सौदागर 20–25 मज़दूरों से काम करवाता था — यानी हर सौदागर के पास सैकड़ों मज़दूर थे

और फिर कारख़ाना आया

220 लाख

इंग्लैंड में सबसे पहले 1730 के दशक में कारख़ाने खुले, पर तेज़ी अठारहवीं सदी के आख़िर में आई। कपास नए युग का पहला प्रतीक थी — 1760 में ब्रिटेन 25 लाख पौंड कच्चा कपास आयात करता था; 1787 में यह 220 लाख पौंड तक पहुँच गया

रिचर्ड आर्कराइट ने सूती कपड़ा मिल की रूपरेखा सामने रखी

मिल की ज़रूरत क्यों पड़ी

- अभी तक कपड़ा उत्पादन पूरे देहात में फैला हुआ था और लोग यह काम अपने-अपने घर पर करते थे
- लेकिन अब महँगी नयी मशीनें ख़रीदकर उन्हें कारख़ानों में लगाया जा सकता था
- कारख़ाने में सारी प्रक्रियाएँ एक छत के नीचे और एक मालिक के हाथों में आ गई थीं
- इसके चलते उत्पादन प्रक्रिया पर निगरानी, गुणवत्ता का ध्यान रखना और मज़दूरों पर नज़र रखना संभव हो गया
- जब तक उत्पादन गाँवों में हो रहा था तब तक ये सारे काम संभव नहीं थे

पर कारख़ानों की चमक ने लोगों को यह भुला दिया कि “उनकी आँखों से ओझल गलियों और वर्कशॉप्स में अभी भी उत्पादन चालू है”

2

रफ़्तार धीमी थी

चार सबूत

चार बातें जो ‘क्रांति’ शब्द पर सवाल खड़ा करती हैं

- पहली — कपास 1840 के दशक तक सबसे बड़ा उद्योग था; इसके बाद लोहा और स्टील आगे निकल गए, क्योंकि 1840 के दशक से इंग्लैंड में और 1860 के दशक से उपनिवेशों में रेलवे फैलने लगी
- 1873 तक ब्रिटेन के लोहा-स्टील निर्यात का मूल्य लगभग 7.7 करोड़ पौंड हो गया — यह कपास निर्यात से दोगुना था
- दूसरी — उन्नीसवीं सदी के आख़िर में भी तकनीकी रूप से विकसित औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूर कुल मज़दूरों में 20 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं थे
- कपड़ा उद्योग गतिशील था, पर उसके उत्पादन का बड़ा हिस्सा कारख़ानों में नहीं बल्कि घरेलू इकाइयों में होता था
- तीसरी — खाद्य प्रसंस्करण, निर्माण, पॉटरी, काँच, चर्मशोधन, फ़र्नीचर और औज़ारों में तरक़्क़ी साधारण और छोटे-छोटे आविष्कारों से हो रही थी
- चौथी — नयी तकनीक महँगी थी, मशीनें अकसर ख़राब हो जाती थीं और वे उतनी अच्छी नहीं थीं जितना दावा किया जाता था

इसीलिए NCERT ने अध्याय का नाम ‘औद्योगिक क्रांति’ नहीं, ‘औद्योगीकरण का युग’ रखा है

सबसे बड़ा सबूत — भाप का इंजन

321

जेम्स वॉट ने न्यूकोमेन के इंजन में सुधार करके पेटेंट कराया और उनके दोस्त मैथ्यू बूल्टन ने उत्पादन किया — पर सालों तक उन्हें कोई ख़रीदार नहीं मिला। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक पूरे इंग्लैंड में भाप के सिर्फ़ 321 इंजन थे

80 सूती उद्योगों में · 9 ऊन उद्योगों में · बाक़ी खनन, नहर निर्माण और लौह कार्यों में

और इसका निष्कर्ष

यानी **मज़दूरों की उत्पादन क्षमता को कई गुना बढ़ाने की संभावना वाली सबसे शक्तिशाली प्रौद्योगिकी को अपनाने में भी उद्योगपति बहुत हिचकिचा रहे थे।**

पाठ्यपुस्तक, पृष्ठ 84

“अब इतिहासकार इस बात को मानने लगे हैं कि उन्नीसवीं सदी के मध्य का औसत मज़दूर मशीनों पर काम करने वाला नहीं बल्कि परंपरागत कारीगर और मज़दूर ही होता था”

3

हाथ का श्रम और वाष्प शक्ति

मशीन क्यों नहीं?

पाँच कारण — यह सीधे 4 अंक का प्रश्न है

कारण	विवरण
मज़दूर भरपूर थे	ग़रीब किसान और बेकार लोग कामकाज की तलाश में बड़ी संख्या में शहरों को जाते थे
इसलिए वेतन कम था	जब श्रमिकों की बहुतायत होती है तो वेतन गिर जाते हैं; उद्योगपतियों को श्रमिकों की कमी की कोई परेशानी नहीं थी
काम मौसमी था	जाड़ों में गैसघर और शराबख़ाने, क्रिसमस से पहले बुक बाइंडर और प्रिंटर, जाड़ों में बंदरगाहों पर जहाज़ों की मरम्मत
मशीन बारीक काम नहीं कर सकती थी	ब्रिटेन में उन्नीसवीं सदी के मध्य में 500 तरह के हथौड़े और 45 तरह की कुल्हाड़ियाँ बनती थीं — इनके लिए इनसानी निपुणता चाहिए थी
उच्च वर्ग हाथ की चीज़ें चाहता था	हाथ से बनी चीज़ों को परिष्कार और सुरुचि का प्रतीक माना जाता था

और सबसे ज़रूरी बात — "मशीनों से बनने वाले उत्पादों को उपनिवेशों में निर्यात कर दिया जाता था"

पृष्ठ 86

अमेरिका और ब्रिटेन — एक ही सवाल, दो उत्तर

अमेरिका

- वहाँ मज़दूरों की कमी थी
- इसलिए उद्योगपति मशीनों का इस्तेमाल पसंद करते थे
- ताकि कम से कम मज़दूरों से काम चल जाए

ब्रिटेन

- वहाँ कामगारों की कोई कमी नहीं थी
- इसलिए हाथ के श्रम को ही प्राथमिकता मिली
- महँगी मशीन का कोई फ़ायदा नहीं दिखता था

एक वाक्य में — “जहाँ आदमी सस्ता हो, वहाँ मशीन महँगी लगती है”

काम की तलाश में — एक मज़दूर की आपबीती

लंदन तक के रास्ते के लिए **खाने और रात को ठहरने का पैसा भी नहीं था। कई दिन हम 20 मील और कई बार उससे कम पैदल चलते थे... तीसरे दिन हमारे पैसे ख़त्म हो गए... दो रातें हमने बाहर ही सोते हुए गुज़ारीं...**

बिल थोर्न — स्रोत-क, नवंबर 1881

नौकरी मिलने की संभावना यारी-दोस्ती, कुनबे-कुटुंब के ज़रिए जान-पहचान पर निर्भर करती थी

मज़दूरों की ज़िंदगी

- रोज़गार चाहने वाले बहुत सारे लोगों को हफ़्तों इंतज़ार करना पड़ता था; वे पुलों के नीचे या रैन-बसेरों में रातें काटते थे
- मौसमी काम की वजह से कामगारों को बीच-बीच में बहुत समय तक ख़ाली बैठना पड़ता था
- उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में वेतन में कुछ सुधार आया, लेकिन इससे मज़दूरों की हालत में बेहतरी का पता नहीं चलता
- नेपोलियनी युद्ध के दौरान क़ीमतें बढ़ीं तो आय के वास्तविक मूल्य में भारी कमी आ गई — वेतन तो पहले जितना था पर उससे पहले जितनी चीज़ें नहीं ख़रीदी जा सकती थीं
- उन्नीसवीं सदी के मध्य में सबसे अच्छे हालात में भी लगभग 10 प्रतिशत शहरी आबादी निहायत ग़रीब थी
- 1830 के दशक की मंदी में बेरोज़गारों की संख्या विभिन्न क्षेत्रों में 35 से 75 प्रतिशत तक पहुँच जाती थी

मज़दूरों की आमदनी सिर्फ़ वेतन दर पर नहीं — **रोज़गार की अवधि पर भी निर्भर होती थी**

और जब मशीन आई तो औरतों ने हमला कर दिया

कोयला मज़दूरों और उनकी बीवियों के गिरोह की परेशानी के कारण... क्योंकि **उनकी बीवियों का काम स्पिनिंग इंजन के कारण छिन गया था।** ...मशीनों को वे **टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहते थे क्योंकि उनकी वजह से शारीरिक श्रम की माँग घटने वाली थी। औरतों ने हंगामा मचाया हुआ था।**

एक मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट, 1790 — स्रोत-ख

स्पिनिंग जेनी — जेम्स हरग्रीव्ज़ ने 1764 में बनाई; एक ही पहिया घुमाने वाला एक मज़दूर बहुत सारी तकलियों को घुमा देता था

4

उपनिवेशों में औद्योगीकरण

भारत की कहानी

पहले भारत का दबदबा था

- मशीन उद्योगों के युग से पहले अंतर्राष्ट्रीय कपड़ा बाज़ार में भारत के रेशमी और सूती उत्पादों का ही दबदबा रहता था
- बहुत सारे देशों में मोटा कपास पैदा होता था लेकिन भारत में पैदा होने वाला कपास महीन क़िस्म का था
- ज़मीन के रास्ते आर्मीनियन और फ़ारसी सौदागर पंजाब से अफ़ग़ानिस्तान, पूर्वी फ़ारस और मध्य एशिया तक जाते थे
- कपड़ों के थान ऊँटों की पीठ पर लाद कर पश्चिमोत्तर सीमा से पहाड़ी दर्रों और रेगिस्तानों के पार ले जाए जाते थे
- समुद्री रास्ते सूरत बंदरगाह भारत को खाड़ी और लाल सागर के बंदरगाहों से जोड़ता था
- कोरोमंडल तट पर मछलीपटनम और बंगाल में हुगली से दक्षिण-पूर्वी एशियाई बंदरगाहों के साथ ख़ूब व्यापार चलता था

आपूर्ति सौदागर बुनकरों को पेशगी देते थे, तैयार कपड़ा ख़रीदते थे और उसे बंदरगाहों तक पहुँचाते थे

और फिर सूरत डूब गया

30 लाख

यूरोपीय कंपनियों ने पहले स्थानीय दरबारों से रियायतें हासिल कीं, फिर व्यापार पर इज़ारेदारी अधिकार प्राप्त कर लिए। सत्रहवीं सदी के आख़िर में सूरत का व्यापार 1.6 करोड़ रुपये का था — 1740 के दशक तक यह गिरकर केवल 30 लाख रुपये रह गया

सूरत व हुगली की जगह बंबई व कलकत्ता का उदय — “पुराने बंदरगाहों की जगह नए बंदरगाहों का बढ़ता महत्त्व औपनिवेशिक सत्ता की बढ़ती ताक़त का संकेत था”

बुनकर की सौदेबाज़ी की ताक़त कैसे ख़त्म हुई

पहले (1760 से पहले)

- फ़्रांसीसी, डच, पुर्तगाली और स्थानीय व्यापारी होड़ में रहते थे
- बुनकर और आपूर्ति सौदागर ख़ूब मोल-भाव करते थे
- माल सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को बेचते थे

बाद में (कंपनी की सत्ता के बाद)

- कंपनी ने व्यापार पर एकाधिकार का दावा किया
- बुनकरों को अन्य ख़रीदारों से कारोबार करने पर पाबंदी लगा दी गई
- पेशगी और क़र्ज़ लेने के बाद कपड़ा केवल गुमाश्ता को ही देना पड़ता था

गुमाश्ता — कंपनी का वेतनभोगी कर्मचारी, जो बुनकरों पर निगरानी रखता था, माल इकट्ठा करता था और कपड़ों की गुणवत्ता जाँचता था

पृष्ठ 91–92

पुराने सौदागर और नए गुमाश्ता में फ़र्क़

- पहले आपूर्ति सौदागर बुनकर गाँवों में ही रहते थे और बुनकरों से उनके नज़दीकी ताल्लुक़ात होते थे
- वे बुनकरों की ज़रूरतों का ख़याल रखते थे और संकट के समय उनकी मदद करते थे
- नए गुमाश्ता बाहर के लोग थे; उनका गाँवों से पुराना सामाजिक संबंध नहीं था
- वे दंभपूर्ण व्यवहार करते थे और सिपाहियों व चपरासियों को लेकर आते थे
- माल समय पर तैयार न होने पर बुनकरों को सज़ा देते थे — उन्हें अकसर पीटा जाता था और कोड़े बरसाए जाते थे
- अब बुनकर न तो दाम पर मोलभाव कर सकते थे और न ही किसी और को माल बेच सकते थे

उन्हें कंपनी से जो क़ीमत मिलती थी वह बहुत कम थी, पर वे क़र्ज़ों की वजह से कंपनी से बँधे हुए थे

पर बुनकरों ने हार नहीं मानी

1 1
कर्नाटक और बंगाल में बहुत सारे बुनकर गाँव छोड़ कर चले गए

2 2
वे अपने रिश्तेदारों के यहाँ किसी और गाँव में करघा लगा लेते थे

3 3
कई स्थानों पर गाँव के व्यापारियों के साथ मिलकर बुनकरों ने बग़ावत कर दी

4 4
बहुत सारे बुनकर क़र्ज़ा लौटाने से इनकार करने लगे

5 5
उन्होंने करघे बंद कर दिए और खेतों में मज़दूरी करने लगे

करघा बंद करना सबसे कठिन फ़ैसला था — इसमें बुनकर को अपनी पीढ़ियों पुरानी पहचान छोड़नी पड़ी

5

मैनचेस्टर का आना

33% से 3% तक

1772 में कहा गया था

भारतीय कपड़े की माँग कभी कम नहीं हो सकती क्योंकि दुनिया के किसी और देश में इतना अच्छा माल नहीं बनता।

हेनरी पतुलो, ईस्ट इंडिया कंपनी के अफ़सर, 1772

लेकिन उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में भारत के कपड़ा निर्यात में गिरावट आने लगी जो लंबे समय तक जारी रही

दो तालिकाएँ, जो पूरी कहानी कह देती हैं

वर्ष	भारत के निर्यात में सूती माल	भारतीय आयात में सूती कपड़ा
अठारहवीं सदी का आख़िर	बहुत ऊँचा	न के बराबर
1811–12	33 प्रतिशत	—
1850–51	मात्र 3 प्रतिशत	31 प्रतिशत (1850 में)
1870	—	50 प्रतिशत से ऊपर

यह अपने आप नहीं हुआ — करवाया गया

ऐसा कैसे हुआ — दो दबाव

- पहला दबाव — जब इंग्लैंड में कपास उद्योग विकसित हुआ तो वहाँ के उद्योगपति दूसरे देशों से आने वाले आयात को लेकर परेशान दिखाई देने लगे
- उन्होंने सरकार पर दबाव डाला कि वह आयातित कपड़ों पर आयात शुल्क वसूल करे
- इससे मैनचेस्टर में बने कपड़े बाहरी प्रतिस्पर्धा के बिना इंग्लैंड में आराम से बिकने लगे
- दूसरा दबाव — उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी पर दबाव डाला कि वह ब्रिटिश कपड़ों को भारतीय बाज़ारों में भी बेचे
- उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ब्रिटेन के वस्त्र उत्पादों के निर्यात में नाटकीय वृद्धि हुई

यानी एक तरफ़ ब्रिटेन ने अपना बाज़ार बंद किया और दूसरी तरफ़ भारत का बाज़ार खोल दिया

और बुनकर दोनों तरफ़ से घिर गया

इस प्रकार भारत में कपड़ा बुनकरों के सामने एक-साथ दो समस्याएँ थीं। **उनका निर्यात बाज़ार ढह रहा था और स्थानीय बाज़ार सिकुड़ने लगा था।**

पाठ्यपुस्तक, पृष्ठ 92

कम लागत पर मशीनों से बनने वाले आयातित कपास उत्पाद इतने सस्ते थे कि बुनकर उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे

तीसरी और चौथी मार

- 1860 के दशक में बुनकरों के सामने नयी समस्या खड़ी हो गई — उन्हें अच्छी कपास नहीं मिल पा रही थी
- जब अमेरिकी गृहयुद्ध शुरू हुआ और अमेरिका से कपास की आमद बंद हो गई तो ब्रिटेन भारत से कच्चा माल मँगाने लगा
- भारत से कच्चे कपास के निर्यात में इस वृद्धि से उसकी क़ीमत आसमान छूने लगी
- भारतीय बुनकरों को कच्चे माल के लाले पड़ गए; उन्हें मनमानी क़ीमत पर कच्ची कपास ख़रीदनी पड़ती थी
- और उन्नीसवीं सदी के आख़िर में भारतीय कारख़ानों में उत्पादन होने लगा और बाज़ार मशीनों की बनी चीज़ों से पट गया

पटना के आयुक्त ने लिखा — “जहानाबाद में यह बिलकुल बंद हो गया है... यह मैनचेस्टर में बनी सस्ती और टिकाऊ वस्तुओं का परिणाम है जिससे स्थानीय निर्माता प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते”

6

फ़ैक्ट्रियों का आना

भारतीय उद्यमी और मज़दूर

भारत की पहली मिलें

वर्ष	घटना
1854	बंबई में पहली कपड़ा मिल लगी; दो साल बाद उत्पादन शुरू
1855	बंगाल में देश की पहली जूट मिल
1862	बंबई में चार मिलें — 94,000 तकलियाँ और 2,150 करघे; और दूसरी जूट मिल
1860 का दशक	कानपुर में एल्गिन मिल; साल भर बाद अहमदाबाद की पहली कपड़ा मिल
1874	मद्रास में पहली कताई और बुनाई मिल

अब सवाल — “ये उद्योग कौन लगा रहा था? उनके लिए पूँजी कहाँ से आ रही थी?”

पूँजी कहाँ से आई

- अठारहवीं सदी के आख़िर से अंग्रेज़ भारतीय अफ़ीम का चीन को निर्यात करने लगे थे और उसके बदले चीन से चाय ख़रीदते थे जो इंग्लैंड जाती थी
- इस व्यापार में बहुत सारे भारतीय कारोबारी सहायक की हैसियत में पहुँच गए थे
- वे पैसा उपलब्ध कराते थे, आपूर्ति सुनिश्चित करते थे और माल को जहाज़ों में लाद कर रवाना करते थे
- व्यापार से पैसा कमाने के बाद उनमें से कुछ व्यवसायी भारत में औद्योगिक उद्यम स्थापित करना चाहते थे
- बंगाल में द्वारकानाथ टैगोर ने 1830–1840 के दशकों में 6 संयुक्त उद्यम कंपनियाँ लगा लीं
- बंबई में डिनशॉ पेटिट और जमशेदजी नुसरवानजी टाटा जैसे पारसियों ने चीन के निर्यात और इंग्लैंड को कच्ची कपास बेचकर पैसा कमाया

मारवाड़ी व्यवसायी सेठ हुकुमचंद ने 1917 में कलकत्ता में देश की पहली जूट मिल लगाई — यही काम जी.डी. बिड़ला के पिता और दादा ने किया था

पर भारतीय व्यवसायी के लिए जगह सिकुड़ती गई

जैसे भारतीय व्यापार पर औपनिवेशिक शिकंजा कसता गया, वैसे-वैसे भारतीय व्यवसायियों के लिए जगह सिकुड़ती गई। **उन्हें अपना तैयार माल यूरोप में बेचने से रोक दिया गया।** अब वे मुख्य रूप से **कच्चे माल और अनाज — कच्ची कपास, अफ़ीम, गेहूँ और नील — का ही निर्यात कर सकते थे।**

पाठ्यपुस्तक, पृष्ठ 95

धीरे-धीरे उन्हें जहाज़रानी व्यवसाय से भी बाहर धकेल दिया गया

मज़दूर कहाँ से आए

24 लाख 1901 में भारतीय फ़ैक्ट्रियों में 5,84,000 मज़दूर काम करते थे; 1946 तक यह संख्या बढ़कर 24,36,000 हो चुकी थी

1911 में बंबई के सूती कपड़ा उद्योग में काम करने वाले 50 प्रतिशत से ज़्यादा मज़दूर पास के रत्नागिरी ज़िले से आए थे

जॉबर — मददगार से मालिक तक

पहलू	विवरण
वह कौन था	कोई पुराना और विश्वस्त कर्मचारी
उसके काम	गाँव से लोगों को लाना, काम का भरोसा देना, शहर में जमने में मदद करना और मुसीबत में पैसे से मदद करना
उसकी ताक़त	इस प्रकार जॉबर ताक़तवर और मज़बूत व्यक्ति बन गया था
उसका दुरुपयोग	बाद में जॉबर मदद के बदले पैसे व तोहफ़ों की माँग करने लगे और मज़दूरों की ज़िंदगी को नियंत्रित करने लगे
दूसरे नाम	‘सरदार’ या ‘मिस्त्री’

नौकरी पाना हमेशा मुश्किल था — रोज़गार चाहने वालों की संख्या रोज़गारों के मुक़ाबले हमेशा ज़्यादा रहती थी

35 साल की नौकरी के बाद

उस ज़माने में **दस घंटे की शिफ़्ट होती थी। शाम पाँच बजे से सुबह तीन बजे तक काम के सबसे भयानक घंटे।** मेरे पिताजी ने **35 साल नौकरी की। उन्हें दमा जैसी बीमारी हो गई और वे काम करने से लाचार हो गए**... इसके बाद मेरे पिताजी वापस गाँव चले गए।

भाई भोसले, बंबई के ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता — स्रोत-च

न पेंशन, न मुआवज़ा, न कोई सुरक्षा — पूरी ज़िंदगी मिल को देने के बाद भी कुछ नहीं बचा

7

औद्योगिक विकास का अनूठापन

हथकरघे मरे क्यों नहीं?

पहले विश्व युद्ध — भारतीय उद्योगों का असली मौक़ा

- पहले विश्व युद्ध तक औद्योगिक विकास धीमा रहा; युद्ध ने एक बिलकुल नयी स्थिति पैदा कर दी
- ब्रिटिश कारख़ाने सेना की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए युद्ध संबंधी उत्पादन में व्यस्त थे, इसलिए भारत में मैनचेस्टर के माल का आयात कम हो गया
- भारतीय बाज़ारों को रातोंरात एक विशाल देशी बाज़ार मिल गया
- भारतीय कारख़ानों में फ़ौज के लिए जूट की बोरियाँ, वर्दी के कपड़े, टेंट और चमड़े के जूते, घोड़े व खच्चर की जीन बनने लगे
- नए कारख़ाने लगाए गए और पुराने कारख़ाने कई पालियों में चलने लगे
- बहुत सारे नए मज़दूरों को काम पर रखा गया और हरेक को पहले से भी ज़्यादा समय तक काम करना पड़ता था

युद्ध के बाद भारतीय बाज़ार में मैनचेस्टर को पहले वाली हैसियत कभी हासिल नहीं हो पाई

और अब सबसे चौंकाने वाली बात

आँकड़ा	विवरण
1911	बड़े उद्योगों में से 67 प्रतिशत बंगाल और बंबई में स्थित थे
1911	पंजीकृत फ़ैक्ट्रियों में कुल औद्योगिक श्रम शक्ति का केवल 5 प्रतिशत काम करता था
1931	यह संख्या बढ़कर 10 प्रतिशत हुई
बाक़ी मज़दूर	गली-मोहल्लों की छोटी-छोटी वर्कशॉप और घरेलू इकाइयों में
1900–1940	हथकरघों पर बने कपड़े का उत्पादन तीन गुना हो गया

यानी कारख़ानों के युग में भी हाथ का काम ख़त्म नहीं हुआ — बल्कि बढ़ गया

कताई मरी, बुनाई बची — यह फ़र्क़ समझिए

कताई (धागा बनाना)

- सस्ते मशीन-निर्मित धागे ने इसे उन्नीसवीं सदी में ख़त्म कर दिया
- हाथ से कातने वालों का रोज़गार चला गया

बुनाई (कपड़ा बनाना)

- तमाम समस्याओं के बावजूद बुनकर अपना व्यवसाय किसी तरह चलाते रहे
- वे उसी सस्ते मशीनी धागे से कपड़ा बुनते रहे
- 1900 से 1940 के बीच उत्पादन तीन गुना हो गया

यह फ़र्क़ न समझने से ही पूरा भ्रम पैदा होता है

हथकरघे बचे क्यों — तीन कारण

- पहला — फ़्लाई शटल। अगर लागत में बहुत ज़्यादा इज़ाफ़ा न हो और उत्पादन बढ़ सकता हो तो हाथ से काम करने वालों को नयी तकनीक अपनाने में कोई परेशानी नहीं होती
- फ़्लाई शटल रस्सियों और पुलियों से चलने वाला यांत्रिक औज़ार है, जो क्षैतिज धागे (ताना) को लम्बवत् धागे (बाना) में पिरो देता है
- 1941 तक भारत में 35 प्रतिशत से ज़्यादा हथकरघों में फ़्लाई शटल लगे थे; त्रावणकोर, मद्रास, मैसूर, कोचीन और बंगाल में तो 70 से 80 प्रतिशत तक
- दूसरा — बेहतर क़िस्म के कपड़े की माँग खाते-पीते तबक़े में ज़्यादा थी, जिसमें उतार-चढ़ाव कम आते थे
- अकालों से बनारसी या बालूचरी साड़ियों की बिक्री पर असर नहीं पड़ता था
- तीसरा — मिल विशेष प्रकार की बुनाई की नक़ल नहीं कर सकते थे; बुने हुए बॉर्डर वाली साड़ियों या मद्रास की प्रसिद्ध लुंगियों की जगह लेना उनके लिए आसान नहीं था

हाथ से बुने कपड़े के महीन डिज़ाइन की मिलों में नक़ल नहीं की जा सकती थी

पर इसका मतलब यह नहीं कि बुनकर ख़ुश था

उनकी **ज़िंदगी बहुत कठोर थी। उन्हें दिन-रात काम करना पड़ता था।** अकसर पूरा परिवार — **बच्चे, बूढ़े, औरतें** — उत्पादन के किसी न किसी काम में हाथ बढ़ाता था।

पाठ्यपुस्तक, पृष्ठ 99

“लेकिन ये फ़ैक्ट्रियों के युग में अतीत के अवशेष भर नहीं थे। उनका जीवन और श्रम औद्योगीकरण की प्रक्रिया का अभिन्न अंग थे”

8

वस्तुओं के लिए बाज़ार

विज्ञापन की दुनिया

नए उपभोक्ता कैसे बनाए गए

- जब नयी चीज़ें बनती हैं तो लोगों को उन्हें ख़रीदने के लिए प्रेरित भी करना पड़ता है
- विज्ञापन विभिन्न उत्पादों को ज़रूरी और वांछनीय बना देते हैं
- वे लोगों की सोच बदल देते हैं और नयी ज़रूरतें पैदा कर देते हैं
- मैनचेस्टर के उद्योगपति कपड़े के बंडलों पर लेबल लगाते थे
- लेबल से ख़रीदारों को कंपनी का नाम व उत्पादन की जगह पता चल जाती थी और वह गुणवत्ता का प्रतीक भी था
- जब किसी लेबल पर मोटे अक्षरों में 'मेड इन मैनचेस्टर' लिखा दिखाई देता तो ख़रीदारों को कोई डर नहीं रहता था

"औद्योगीकरण की शुरुआत से ही विज्ञापनों ने एक नयी उपभोक्ता संस्कृति रचने में अपनी भूमिका निभाई है"

चार तरीक़े जो सौ साल पहले भी चलते थे

तरीक़ा	उसका तर्क
लेबल पर देवी-देवताओं की तसवीर	निर्माता दिखाना चाहते थे कि ईश्वर भी चाहता है कि लोग उस चीज़ को ख़रीदें
कृष्ण या सरस्वती की छवि	इससे विदेशों में बनी चीज़ भी भारतीयों को जानी-पहचानी सी लगती थी
कैलेंडर	अख़बार तो पढ़े-लिखे ही समझते थे, पर कैलेंडर उनको भी समझ आते थे जो पढ़ नहीं सकते; वे साल भर घरों और दुकानों में लटके रहते थे
सम्राटों और नवाबों की तसवीर	संदेश यह था — अगर आप इस शाही व्यक्ति का सम्मान करते हैं तो इस उत्पाद का भी सम्मान कीजिए

आज भी तरीक़ा वही है — भरोसे को उधार लेना; बस चेहरे बदल गए हैं

और जब भारतीयों ने विज्ञापन बनाए

स्वदेशी

“जब भारतीय निर्माताओं ने विज्ञापन बनाए तो उनमें राष्ट्रवादी संदेश साफ़ दिखाई देता था। इनका आशय यह था कि अगर आप राष्ट्र की परवाह करते हैं तो उन चीज़ों को ख़रीदिए जिन्हें भारतीयों ने बनाया है”

चित्र 28 — एक देवी अहमदाबाद के मिल में बना कपड़ा दान कर रही हैं और लोगों से भारत में बने कपड़े के इस्तेमाल का आह्वान कर रही हैं

अध्याय का निष्कर्ष

ज़ाहिर है कि उद्योगों के युग में बड़े-बड़े प्रौद्योगिकीय बदलाव आए हैं, फ़ैक्ट्रियों का उदय हुआ है और नयी औद्योगिक श्रमशक्ति अस्तित्व में आई है। **लेकिन जैसा कि आपने देखा है, इस युग में हाथ से बनने वाली चीज़ें और छोटे पैमाने का उत्पादन भी औद्योगिक भूदृश्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है।**

पाठ्यपुस्तक, पृष्ठ 101

और अब पाठ्यपुस्तक कहती है — "चित्र 1 और 2 को दोबारा देखिए। अब बताइए कि ये छवियाँ क्या दर्शाती हैं"

दो देशों की उलटी कहानी — यह तालिका पक्की कर लीजिए

बिंदु	ब्रिटेन	भारत
कपास	आयात 1760 में 25 लाख से 1787 में 220 लाख पौंड	निर्यात में सूती माल 33% से घटकर 3%
कारख़ाने	1730 के दशक में पहले कारख़ाने	1854 में बंबई की पहली मिल
मज़दूर	बहुत थे, इसलिए मशीन कम अपनाई गई	बहुत थे, पर उनका रोज़गार मशीन ने छीन लिया
भर्ती	यारी-दोस्ती और जान-पहचान से	जॉबर के ज़रिए
मोड़ का समय	1840 का दशक — रेलवे और लोहा-स्टील	पहला विश्व युद्ध
हाथ का काम	परंपरागत उद्योग बने रहे	हथकरघा उत्पादन 1900–1940 में तीन गुना

अध्याय का असली सबक़

हर बड़ा बदलाव किसी न किसी की क़ीमत पर आता है। सवाल यह है कि क़ीमत कौन चुका रहा है और फ़ायदा किसे मिल रहा है।

पूरे अध्याय का सार

स्पिनिंग जेनी से उत्पादन बढ़ा — क़ीमत औरतों ने चुकाई · मैनचेस्टर का कपड़ा सस्ता था — क़ीमत भारतीय बुनकर ने चुकाई · कारख़ानों में उत्पादन बढ़ा — क़ीमत दस घंटे की शिफ़्ट करने वाले मज़दूर ने चुकाई

चार आँकड़े — बस इतना पक्का कर लीजिए

4

321 भाप के इंजन · **33% → 3%** भारत का सूती निर्यात · **1854** बंबई की पहली मिल · **तीन गुना** हथकरघा उत्पादन (1900–1940)

और तीन शब्द — **आदि-औद्योगीकरण · गुमाश्ता · जॉबर**

मरुशाला की कहानी

दो शिक्षक, एक मरुशाला



भरत चौधरी

व्याख्याता

रा.उ.मा.वि. जेठन्तरी · ब्लॉक समदड़ी, जिला बालोतरा



वनिता कुमारी

व्याख्याता

रा.उ.मा.वि. रामसीन मूंगड़ा · ब्लॉक एवं जिला बालोतरा

फ़ोन के कैमरे से स्कैन कीजिए

यह स्लाइड शो ऑनलाइन

marushala.com/teach/slides/class-10/history/audyogikaran-ka-yug

विद्यार्थियों के लिए रिवीजन नोट्स

marushala.com/notes/class-10/history/revision-notes/audyogikaran-ka-yug

MARUSHALA **marushala.com** निःशुल्क · बिना लॉगिन · हिन्दी और अंग्रेज़ी